dastak May 2017 new:dastak April 2017.qxd 5/17/2017 3:32 PM Page 52

साक्षात्कार

मेरे लिए लेखन ब्रह्माण्ड के साथ एकाकार होने का माध्यम है

सुधा ओम ढींगरा जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है, आप कथाकार, कवयित्री, सम्पादक, रंगकर्मी, समाजसेवी होने के साथ-साथ सुपरिचित पत्रकार भी हैं तथा उत्तरी अमेरिका में भारतीय संस्कृति, साहित्य आदि के विकास एवं प्रचार-प्रसार के लिए प्रतिबद्ध हैं। अपनी शारीरिक अक्षमता पर किस तरह विजय पायी जाती है और कैसे जीवन को पूरी जीवंतता और रचनात्मकता से जिया जाता है, इसका जीता -जागता उदाहरण हैं सुधा। सुधा जी के जीवन की सर्जनात्मकता और जीवन्तता से पाठकों को रूबरू करा रही हैं दस्तक की साहित्य-सम्पादक

डॉ. सुमन सिंह

अपने उस परिवेश के बारे में कुछ बताइये जिसने आपके बालमन को गढ़ा-संवारा और सृजनात्मक बनाया ?

एक साहित्यिक परिवार में जन्म हुआ। घर में बहुत बड़ी-लाइब्रेरी थी। सबको पढ़ने का बेइंतिहा शौक था। पापा पंजाबी के शायर थे और भैया उर्दू के। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी की पुस्तकों की भरमार थी। पढ़ने-लिखने पर कोई रोक-टोक नहीं थी। मेरा ऐसा मानना है, कुछ मूलभूत प्रवृत्तियों के साथ ही देह को स्वरूप मिलता है। लिखने के बीज इंसान के अन्दर होते हैं ,परिवेश, हालात-परिस्थितियां और अनुभव जब उन्हें खाद पानी देते हैं तो वे फूट पड़ते हैं मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। बचपन के कटु अनुभवों और शारीरिक संघर्ष ने मेरे अंदर पड़े बीजों को प्रस्फुटित कर दिया। मैं पोलियो सर्वाइवल हूँ। पोलियो से बच कर भी बाईं टांग और शरीर कमजोर था। खेलने से वंचित रही। बरामदे में बैठी अड़ोस-पड़ोस के बच्चों को खेलते देखती तो अपने लिए कल्पना की दुनिया सजा लेती। उसी दुनिया से निकल कर कभी-कभी उन बच्चों के साथ खेलने को मन करता पर स्वयं को संभाल न पाती और गिर जाती। कुछ बच्चे उठाने को दौड़ते और कुछ लंगड़ी-लंगड़ी कह कर चिढ़ाते। बालमन चोट के दर्द से कहीं अधिक 'लंगड़ी' शब्द से आहत होता। रोती हुई बरामदे में आ बैठती और लंगड़ी शब्द का दंश भीतर कचोटता रहता और तरह -तरह के विचारों के साथ कल्पना घुलती- मिलती रहती और कलम से कागज पर उतर जाती। पता नहीं होता था क्या लिख रही हूँ। अत्यंत संवेदनशील थी। अपना दर्द, अहसास, पीड़ा लिखने में उड़ेलती रही। लिखना उस समय मेरे लिए एक तरह का आउट लेट था। शारीरिक असमर्थता के गुस्से और रोष को लेखन ने बहुत काबू में रखा। बाद में भावनाओं का आवेग कविता का रूप धारण करने लगा प्रज्ञाचक्षु मौसी की छत्रछाया में मेरा बचपन बीता है। उन्हें कहानियाँ सुनाने का बड़ा शौक था और वे बहुत रोचक तरीके से कहानियाँ सुनाती थीं। मैं भी बाहर की हर बात, हर घटना उन्हें कहानी बना कर सुनाती। कहानियाँ सुनते-सुनाते मैं कब कहानी लिखने लगी, पता ही नहीं चला। बचपन में खेल नहीं पाई, हाथ में कलम थमा दी गई जो आज तक साथ निभा रही

है। सकारात्मक सोच वाला बेहद खुशहाल परिवार था मेरा और इस परिवेश ने मुझे बहुत निडर और मजबूत बनाया तथा सकारात्मक दृष्टि दी। तीन तभी से मेरे साथ हैं -प्रेम-पेशेंस-प्रेयर।

पापा वामपंथी विचारधारा के थे और मम्मी कांग्रेसी। होश संभालते ही मां-पापा को दूसरों के लिए जीते देखा। दोनों चिकित्सक थे और साथ ही सोशल एक्टिविस्ट और रिफर्मर भी थे। अतः मानवता मेरे धर्म, कर्म और विचारों में रच-बस गई। बहुत छोटी उम्र से अखबारों के बाल स्तम्भों में छपने लगी थी। अब यह आलम है साहित्य मेरा खाना, पीना, ओढ़ना और बिछौना है। साहित्य से इश्क है और उससे की गई मुहब्बत का आनन्द लेती हूँ। जीवन और उसमें आए उतार-चढ़ाव तथा चुनौतियाँ मुझे प्रेरित करती हैं।

वह पहली प्रकाशित रचना कौन सी थी जिसने आपकी रचनात्मकता को पंख दे दिए?

रचनात्मकता को पंख तो अभी भी नहीं मिले। लिखना निरन्तर कर्म है। हाँ लेखन में एक टर्निंग प्वाइन्ट जरूर आया। पाँच वर्ष की आयु में आकाशवाणी की बाल कलाकार बन गई थी और बाल स्तम्भों में लिखती हुई पत्रकारिता जगत में प्रवेश कर गई थी। बहुत छोटी उम्र में दैनिक समाचार पत्र पंजाब केसरी, जालंधर के लिए इंटरव्यू स्तम्भ में साक्षात्कार लेने लगी थी। परिवार नहीं चाहता था कि मेरी शारीरिक कमजोरी मेरे व्यक्तित्व पर हावी हो। आत्मविश्वास में कमी आए। कला और साहित्य को मैं नैसर्गिक प्रतिभा मानती हूँ। परिवार ने शायद प्रकृति की इस ऊर्जा को, जो मेरे भीतर थी, पहचान लिया था। मुझे भिन्न-भिन्न माध्यमों से प्रेरित किया और प्रोत्साहित किया। मैं किशोरावस्था तक, रेडियो, रंगमंच की कलाकार बन चुकी थी और बाद में टीवी की कलाकार बनी। अखबारों में मेरी स्पोर्टिंग, विभिन्न स्तम्भों, साक्षात्कारों के साथ कहानियां, यहां तक की धारावाहिक उपन्यास भी छप गया था। वह समय ऐसा था जब अखबारों में छपना बड़े गर्व की बात थी। समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करण बहुत चाव से पढ़े जाते थे। उस समय का लिखा कुछ भी पुस्तक रूप में नहीं आया। शायद पुस्तक छपवाने की ओर ध्यान ही नहीं गया, इस बात का मुझे रंज है। यह नहीं कि उस समय के लिखे को मैंने खारिज कर दिया। हालाँकि मैं मानती हूँ, वह अनुभवहीन भावुक लेखन था। पर लोगों ने बहुत पसंद किया था। उन रचनाओं को अब भी पढ़ती हूँ तो लगता है, थोड़ा ठीक करके उन्हें छपवा लूँ।

1982 में शादी के बाद अमेरिका आई। तो कुछ समय के लिए लेखन रुक गया। यहाँ के संघर्ष में लिख नहीं पाई। पर उतने वर्ष अनुभव बहुत समेटे। अंग्रेजी साहित्य पढ़ा। हिन्दी साहित्य उपलब्ध नहीं था। फिर जब कलम उठाई तो लेखन की धार यथार्थ के धरातल पर खड़ी पाई, अनुभवों ने उसे गम्भीर चिंतन दे दिया था और संघर्ष के थपेड़ों ने उसे तराश दिया था। तब महसूस हुआ, साहित्य की संरचना कठिन साधना है। पात्रों की रचना करते हुए रचनाकार एक ऐसी दुनिया में होता है, जहाँ वह उस शक्ति, जिसे अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है, के करीब होता है। पात्रों के सुख-दुःख को भोगता है। उनके साथ हँसता-रोता है।

गम्भीर लेखन के क्रम में पहली रचना कौन सी थी, किस मनोदशा और पृष्ठभूमि पर रची गई थी?

सुमन जी, हिन्दी का उच्च कोटि का साहित्य विवाहपूर्व पढ़कर आई थी और अमेरिका में अंग्रेजी साहित्य पढ़े क्योंकि हिंदी पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं। वहाँ के अनुभवों ने और इस देश के परिवेश ने दिल के साथ-साथ मस्तिष्क का प्रयोग करना भी सिखाया। सोच और दृष्टि व्यापक हुई। अस्सी के दशक में विदेश को स्वर्ग समझा जाता था, विशेषतः पंजाब में। अंतर्जाल, सोशल साइट्स, सोशल मिडिया का नामोनिशान भी नहीं थाय विदेशों के बारे में सही जानकारी लोगों को मिल नहीं पाती थी। कहा-सुनी पर ही विदेश, धरती का स्वर्ग है, माना जाता था। विदेशों से लौट कर जाने वाले भी देश वासियों को सच नहीं बताते थे। पेट्रोल पम्प, जिसे वहाँ गैस स्टेशन कहा जाता है, वहाँ पर छोटा-मोटा काम करने वाला भी अपने गाँव या शहर में जाकर स्वयं को पेट्रोलियम इंजीनियर बताता था। डालर्ज और पाउंड्स की चमक लोगों को भरमाती थी। आकर्षण अभी भी कम नहीं हुआ, तभी तो विदेशों में भारतीयों की संख्या धड़ाधड़ बढ़ती जा रही है। पर अब आने वालों को यहाँ की जानकारी है।

स्वर्ग का जो यथार्थ जाना, वह लिखा। स्वर्ग का अकेलापन, दो संस्कृतियों का टकराव और द्वंद्व था पहली कहानी क्यों भेज्यो विदेश? में। यह पत्र शैली में थी, बेटी अपनी माँ को पत्र लिखती है और उस समय यह कहानी पंजाब केसरी अखबार में छपी थी। यहाँ के जीवन का भी चित्र-चित्रण था कैसे एक लड़की जिसने अपने घर में कोई काम नहीं किया होता, इस देश में आकर बावर्ची, धोबी, मेहरी, सफाईवाली और गन्दगी साफ करने वाली बन जाती है। पति जब घर के लॉन की घास काटते, तो उसे कैसा महसूस होता? सब लिखा उस कहानी में। बचपन में उसने पंजाब में बड़े बुजुर्गों के मुँह से नालायक लड़कों के लिए यह कहते सुना था साले पढ़े गा नहीं तो घास काटेगा। यहाँ पति पढ़-लिख कर घास काट रहे थे। पहले-पहले बहुत झटका लगा था, जब सब काम स्वयं करने पड़े थे। रो-रो कर परिवार को पत्र लिखे थे। उस समय का जीवन, संघर्ष ही लेखनी में उतरा। उस समय के अमेरिका और आज के अमेरिका में बहुत अंतर है। तब पूरे अमेरिका में हजारों की संख्या थी भारतीयों की और अब करोड़ों में हैं। भारतीय ग्रोसरी मिलनी ही मुश्किल थी। न्यूयार्क या शिकागो से मंगवाई जाती थी, एक सप्ताह बाद पहुँचती थी। मोलगप्पे से लेकर मिठाइयाँ तक स्वयं बनानी सीखीं। अब तो हर शहर में कई ग्रोसरी स्टोर्ज, रेस्टोरेंट, केटरिंग सर्विसेज, घरों में काम करने वालीं, घास काटने वाले उपलब्ध हैं। फिर भी रोज मर्रा के काम स्वयं ही करने पड़ते हैं। पत्रात्मक शैली में इसी शीर्षक के अन्तर्गत तीन कहानियाँ छपी थीं। ढेरों चिट्ठियाँ आईं। वह जमाना पत्रों का था। मेरे संपादक ने वे चिट्ठियाँ मेरे परिवार को जालंधर में दे दीं, जिन्होंने वे पत्र मुझे यहाँ भेजे। उन्हें पढ़ने के बाद महसूस हुआ, लेखन कितना गंम्भीर कर्म है। समाज को सही दिशा इससे दी जा सकती है। इसकी सार्थकता इसके औचित्य में निहित है। निजी विलास के लिए यह शब्दों का खेल नहीं, जिसे आज सोशल मीडिया पर देखा जा सकता है।

पहले मैं हिन्दी चेतना की संपादक थी, अब विभोम-स्वर की प्रधान संपादक हूँ। कई कहानियाँ ऐसी आती हैं, जिसको लिखते हुए लेखक को स्वयं पता नहीं चलता, किस पात्र को लेकर कहानी शुरू की है और किसे लेकर अंत कर रहे हैं। लेखक ने दूसरी बार कहानी को पढ़ने का प्रयास ही किया और उसे छपने के लिए भेज दिया होता है। इसी तरह कविता में कई रचनाकार क्या कहना चाहते हैं, स्वयं उन्हें पता नहीं होता पर वे छपना चाहते हैं। उन्हें छापने से मेरे इनकार करने पर वे किसी ई-पत्रिका में छप जाते हैं। साहित्य की गंभीरता, उससे जुड़ी जिम्मेदारी और प्रतिबद्धता को वे जान ही नहीं पाते।

यहाँ आकर जो महसूस किया, उस समय उन्हें रंगमंच के नाटकों में उतार कर अभिनीत किया। नाटकों का मंचन हर वर्ष अभी भी करती हूँ। पर अब विषय अलग होते हैं।

क्या वैवाहिक जीवन ने आपके रचनाकर्म को प्रभावित किया ?

मेरे पति डॉ. ओम डोगरा साईंटिस्ट हैं, पर उन्होंने एक पत्रकार, कलाकार और लेखिका से शादी की। वे कला और साहित्य के प्रशंसक हैं। मुझे बेहद प्रोत्साहित करते हैं। मेरी रचनाओं के पहले पाठक और निष्पक्ष आलोचक हैं। जब भी कुछ लिखने की बेचैनी होती है तो समझ जाते हैं, पूरा सहयोग देते हैं। हम दोनों बहुत अच्छे दोस्त हैं। नक्काशीदार केबिनेट उपन्यास उन्हीं की प्रेरणा से पूरा हुआ। हाँ, शादी के फौरन बाद कुछ वर्षों तक रचनाकर्म रुका रहा। उसका कारण नया देश, नया परिवेश था। अस्मिता और स्थापित होने का संघर्ष था। इतना बड़ा परिवर्तन था कि सब कुछ समझने और गृहस्थी जमाने में समय लगा। कलम उठा ही नहीं सकी। विचारों का रेलमपेल था। अंर्तद्वंद्व था। कुछ भी स्पष्ट नहीं था। नया कुछ सीखने में ऊर्जा इतनी लग जाती थी और कुछ सूझता ही नहीं था। मानसिक ऊहापोह थी। स्थाथी होकर जब कलम उठाई तो ऐसा लगा मैं हूँ, मेरा अस्तित्व, मेरी अस्मिता और मेरा व्यक्तित्व है। मैं स्वयं में लौट आई थी। लेखन से ब्रह्माण्ड के साथ एकाकार हुई महसूस करती हूँ। आभारी हूँ कि इसने मुझे चुना।

लिखने के बाद परम आनंद की अनुभूति होती है। यही अनुभूति मेरी ऊर्जा है।

वह कौन सा राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान था, जिसने आपको लेखन के प्रति और गहरे दायित्वबोध से और नव-उत्साह व ऊर्जा से भर दिया था ?

लेखन के प्रति मैं हमेशा गहरे दायित्वबोध से और नव-उत्साह व ऊर्जा से भरी रहती हूँ, मेरी प्रवृत्ति ही ऐसी है। फैमिली काउंसलिंग के पेशे के साथ पत्रिकाएँ विभोम-स्वर, शिवना साहित्यिकी का काम समाप्त होता है तो किसी कहानी में जुट जाती हूँ। साथ ही लेख, इंटरव्यू, स्तम्भ, कविताएँ, उपन्यास लेखन भी चलता रहता है। हर वर्ष कवि सम्मलेन करवाती हूँ, उससे एकत्रित धन को हिन्दी के कार्यों में प्रयोग किया जाता है। साल में एक बार हिन्दी नाटक का मंचन होता है और निर्देशन के साथ-साथ उसमें अभिनय जरूर करती हूँ। रामलीला का नाट्य रूपांतरण हर वर्ष होता है। जिसका लेखन और निर्देशन करती हूँ। फिर डीगरा फाउण्डेशन की तरफ से सामाजिक कार्य चलते ही रहते हैं।

सम्मानों की गरिमा प्रोत्साहित करती है। भारत के माननीय राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी से सम्मान लेकर उत्साहित हुई थी। पर काम के प्रति प्रतिबद्धता पहले भी थी और अब भी निरंतर जारी है।

प्रवासी लेखन पर आपकी क्या राय है? क्या मुख्यधारा के साहित्य से इसे अलगा दिया जाना उचित है?

सुमन जी, जैसा कि मैं पहले बता चुकी हूँ, अमेरिका आने से पहले मैं पत्रकार थी। रिपोर्टिंग के साथ-साथ कहानियाँ, कविताएँ, लेख, साक्षात्कार भी लिखती थी। मुख्य विधा मेरी साक्षात्कार और स्तम्भ लेखन था। साथ में अन्य विधाओं पर भी कार्य होता रहता था। यहाँ आने के बाद कुछ समय तक लेखन रुक गया। दो संस्कृतियों के टकराव के द्वंद्व और नए देश, नए परिवेश में स्थापित होने के संघर्ष में उलझ कर रह गई। जब कलम उठाई और छपने के लिए रचनाएँ भेजीं तो मैं प्रवासी लेखिका बन चुकी थी। बड़ी कोफ्त हुई। अरे अपने देश से शादी के बाद विदेश आई हूँ हर लड़की अपना घर छोड़ कर जाती है। प्रवासी कैसे हो गई? पर फिर धीरे-धीरे सोच ने भावनाओं के साथ तालमेल बिठाया। शादी के बाद लड़की जब घर छोड़ती है तो उसे पराई कहा जाता है, मैंने तो देश छोड़ा है। मस्तिष्क और बुद्धि ने मिल कर सोचा तो कोफ्त का कोहरा छँटा। हकीकत की रोशनी नजर आई।

जो मैं समझ पाई और जिस हकीकत ने यथार्थ से परिचय करवाया, वह है कि जहाँ तक मैं समझ पाई विदेशों में लिखा जा रहा साहित्य पाठकों को नए भावबोध, नई दुनिया, नई सोच, नए परिवेश से जोड़ता है। वैश्विक संसार से परिचित करवाता है शायद इसीलिए इसे प्रवासी साहित्य कहा जाता है।

साहित्य में कभी प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, रहस्यवाद और छायावाद थे तथा अब तरह-तरह के विमर्श हैं। साहित्य में यह चर्चा हमेशा चलती रहती है, साहित्य को भिन्न-भिन्न खेमों, वादों या विमर्शों में बांटना नहीं चाहिए। साहित्य में निहित भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के मूल्याङ्कन के लिए शायद समय-समय पर ऐसा करना पड़ता है। जैसे अब प्रवासी साहित्य या प्रवासी विमर्श, स्त्री-विमर्श या दलित विमर्श।

आपने प्रवासी साहित्य पर मेरी राय पूछी है, मेरा लेखन पाठकों तक पहुँचे, बस मैं इतना ही चाहती हूँ, वह प्रवासी साहित्य के तहत पहुँचे या प्रवासी लेखक होने के नाते या किसी और रूप में, मैं ज्यादा नहीं सोचती। बस अपना काम करती रहती हूँ, अपनी ऊर्जा बस अपने लेखन में झोंकती हूँ।

अपनी अब तक की सृजनयात्रा से आप कितनी संतुष्ट हैं ?

साहित्य का सागर बहुत गहरा है, मुझे तो अभी इसके किनारे से घोंघे सिप्पियाँ ही मिली हैं, हीरे-जवाहरात ढूँढ़ने के लिए गहरी डुबकी लगाना बाकी है.. ऐसा लगता है, मैंने अभी कुछ लिखा ही नहीं बहुत कुछ लिखना बाकी है। मेरे जैसे जिज्ञासु विद्यार्थी को जो कभी संतुष्टि नहीं हो सकती। नया कुछ जानने, सीखने और लिखने की भूख-प्यास लगी रहती है।

भविष्य की योजनाएँ क्या हैं?
मैं वर्तमान में जीने वालों में से हूँ। कभी भविष्य की योजनाएँ नहीं बनाती, जो सामने कार्य आता है, उसे बड़े मनोयोग से करती हूँ। कुछ कहानियाँ आधी-अधूरी पड़ी हैं, उन पर काम कर रही हूँ, नए उपन्यास की रूपरेखा तैयार हो चुकी है।

अपनी कौन सी कृति आपको बेहद प्रिय लगती है ?

मैंने अपनी सब कृतियों में स्वयं को झोंका है। मुझे सब प्रिय हैं। जैसा कि मैंने पहले कहा है, सर्वोत्तम आना बाकी है, बहुत कुछ लिखना बाकी है। पर पाठकों ने मेरा उपन्यास नक्काशीदार केबिनेट और कहानियाँ कौन सी जमीन अपनी, टरनेडो, सूरज क्यों निकलता है? आग में गर्मी कम क्यों है? कमरा नंबर 103, बेघर सच, क्षितिज से परे और वह कोई और थी.. बहुत पसंद की हैं।

अपने गढ़े चरित्रों में से कौन सा चरित्र आपकी अपनी प्रतिकृति है ?

मेरे गढ़े चरित्रों में से कोई भी ऐसा चरित्र नहीं जो मेरी प्रतिकृति हो। चरित्र विषय और कथ्य अनुरूप होते हैं। हाँ, मेरी सोच, मेरे जीवन मूल्यों और जीवन दर्शन की प्रतिछाया मेरी लेखनी और पात्रों के व्यवहार, व्यक्तित्व और विचारों में जरूर मिलेगी। कमजोर से कमजोर स्त्री पात्र भी अन्दर से मजबूत होती है। निर्णय उनके दृढ़ होते हैं, पर साथ ही वे धैर्यवान भी होती हैं। मेरे लेखन में आपको सकारात्मकता मिलेगी। मैं बहुत सकारात्मक सोच की हूँ।

आपने साहित्य की किन- किन विधाओं में लिखा है ?

गजल, निबंध को छोड़कर बाकी सब विधाओं में लिखने की कोशिश की है।

सर्वाधिक प्रिय विधा कौन सी है ?

जिज्ञासु प्रवृत्ति की हूँ, इसलिए मुझे साक्षात्कार लेने में बड़ा मजा आता है। कहानी और उपन्यास दिल से लिखती हूँ। फैमली काउन्सलर हूँ, कभी-कभी ऐसी कहानियाँ मिलती हैं, जो पूरा वजूद हिला देती हैं। बेचैन हो जाती हूँ। तब बस जाता है अपना एक संसार, और गढ़ने लगती हूँ पात्र। जीती रहती हूँ उनका जीवन। ढल जाती हूँ उन्हीं के रंग में। महीनों कभी-कभी वर्षों तक भी। सूरज क्यों निकलता है? कहानी लिखने में छह वर्ष लगे। इस कहानी का जन्म ही तब हुआ, जब मैं यहाँ की गरीबी रेखा से नीचे वाली बस्तियों में गई, वहाँ के बाशिंदों की जिन्दगियों को करीब से देखा, उनसे मिल कर उनके बारे में सच जाना। उनकी क्लबों में जाना जीवन को जोखम में डालने वाली बात थी, पर गई। इसके बाद कहानी लिखी, जो कहना चाहती थी, समाज और साहित्य को देना चाहती थी, सब कह डाला इस कहानी में।

अब तक प्रकाशित कृतियाँ ? लेखन के साथ आप संपादन के क्षेत्र में भी सक्रिय हैं ?

उपन्यास नक्काशीदार केबिनेट, कहानी संग्रह दस प्रतिनिधि कहानियाँ, कमरा नंबर 103, कौन सी जमीन अपनी, वसूली, कविता संग्रह सरकती परछाइयाँ, धूप से रूठी चाँदनी, तलाश पहचान की, सफर यादों का, मेरा दावा है (अमेरिकी शब्द-शिल्पियों का काव्य संकलन का संपादन), संपादन वैश्विक रचनाकार कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ (साक्षात्कार संग्रह) भाग-1 और 2 , इतर (प्रवासी महिला कथाकारों की कहानियाँ), सार्थक व्यंग्य का यात्री प्रेम जनमेजय, विमर्श अकाल में उत्सव, अनुवाद परिक्रमा (पंजाबी से अनुदित हिन्दी उपन्यास), कौन सी जमीन अपनी का कुनखन आपुन भूमि (असामी में अनुवाद नीलाक्षी फुकन का), टरनेडो और ओह कोई होर सी (पंजाबी में) में अनुवाद-नव्यवेश नयराही का। कई कहानियाँ अंग्रेजी में अनुदित, 45 संग्रहों में कविताएँ, कहानियाँ, आलेख प्रकाशित, माँ ने कहा था (काव्य सीडी),शोध पुस्तकें सुधा ओम ढींगरा रचनात्मकता की दिशाएँ- लेखिका वंदना गुप्ता, डा.सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में अभिव्यक्त तथा निहित समस्याएँ- लेखिका निधिराज भटाना एवं रेणु पाण्डेय, जो मैं कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करती हूँ, विभोम-स्वर पत्रिका की मुख्य संपादक हूँ जो अमेरिका और भारत से प्रकाशित होती हैं। हिन्दी चेतना, उत्तरी अमेरिका की त्रैमासिक पत्रिका का सात वर्ष तक संपादन किया। भारत के तकरीबन 1000 पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ और आलेख प्रकाशित।